(द) पूँजी कर (Capital Levy)—पूँजी-कर पूँजी पर लगाया गया एक विशेष कर है जो सार्वजनिक ऋण की सम्पूर्ण राशि का भुगतान एक ही बार करने के लिये लगाया जाता है। एक निश्चित मूल्य से अधिक पूँजीगत परिसम्पत्तियों पर अत्यन्त प्रगतिशील दर से कर लगाकर ऋण-शोधन के लिये पर्याप्त राशि एकत्रित की जाती है। प्रायः युद्ध के समय लिये गये ऋणों का भुगतान करने के लिये पूँजी-कर का सहारा लिया जाता है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने पूँजी-कर के पक्ष एवं विपक्ष में अनेक तर्क दिये हैं।

रिकार्डो ने सर्वप्रथम पूँजी-कर लगाने का प्रस्ताव किया था। पूँजी-कर के **पक्ष** में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं—(i) युद्ध के समय लिये गये ऋणों से एकदम मुक्ति प्राप्त हो जाती है तथा बार-बार कर लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है जिससे उद्योग एवं व्यापार को भी हानि नहीं होती बल्कि उनकी उन्नति होती है क्योंकि उन पर कर का भार नहीं बढ़ता। (ii) निर्धन वर्ग ने युद्ध काल में अपनी जान गँवाई है अतः धनी वर्ग को कम-से-कम आर्थिक त्याग तो करने ही चाहिए। (iii) युद्ध के तुरन्त बाद ऋण का भुगतान कर देना चाहिए क्योंकि युद्ध के बाद कीमत-स्तर ऊँचा होता है अतः उस समय ऋण का भुगतान करने से ऋण-भार कम पड़ता है जबकि युद्ध समाप्ति से काफी समय पश्चात् जब कीमत-स्तर कम हो जाता है तब ऋण भुगतान करने से व्यक्तियों पर ऋण का भार अधिक होगा इसलिए पूँजी-कर की सहायता से युद्धकालीन ऋणों का तुरन्त भुगतान कर देना चाहिए। (iv) जब सरकार ऋण-मुक्त हो जाती है तब वह अपनी आय का अधिक भाग सामाजिक कल्याण में लगा सकती है। (v) पूँजी-कर से देश में व्याप्त आर्थिक विषमता में भी कमी की जा सकती है।

पूँजी-कर के **विपक्ष** में तर्क देते हुए कहा जाता है कि (i) इस कर के लगने से व्यक्तियों की काम व बचत करने की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जिससे उत्पादन हतोत्साहित होगा। (ii) इस कर के लगने से पूँजी का विदेशों में बहिर्गमन प्रारम्भ हो जायेगा। (iii) पूँजी के मूल्यों को आँकने में अनेक प्रशासनिक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। (iv) यह कर आय पर नहीं लगता, इसलिये वे व्यक्ति कर से बिल्कुल बच जाते हैं जिनकी आय बहुत अधिक है।

किन्तु यह सब होते हुए भी पूँजी-कर ऋण की अदायगी का एक शीघ्रगामी एवं न्यायपूर्ण तरीका है। युद्धकालीन ऋणों को कम करने के लिये इसका विशेष रूप से महत्व है। प्रायः अस्थायी ऋणों का भार कम करने के लिये पूँजी-कर बहुत लाभकारी सिद्ध हो सकता है। किन्तु इसका प्रयोग नियमित रूप से नहीं किया जाना चाहिए।

सार्वजनिक ऋण के आर्थिक प्रभाव
[Economic Effects of Public Debt]

सार्वजनिक ऋण का आर्थिक प्रभाव ऋण के आकार, उद्देश्य तथा प्रबन्ध पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण का प्रभाव ब्याज की दर तथा ऋण-शोधन की नीति पर भी निर्भर करता है। सार्वजनिक ऋण का प्रभाव अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागों पर पड़ता है जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में संसाधनों की पूर्ति एवं आबंटन, आय का वितरण, कार्य करने की क्षमता एवं इच्छा आदि प्रभावित होती है। प्रमुख रूप से सार्वजनिक ऋणों के प्रभाव निम्नलिखित होते हैं :

(1) मुद्रा की पूर्ति एवं कीमत-स्तर पर प्रभाव—सार्वजनिक ऋण जब जनता से लिया जाता है तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा में कमी हो जाती है। हाँ, जब सरकार बैंकों से ऋण लेती है तो अवश्य साख की मात्रा में वृद्धि हो जाती है जिसका स्फीतिक प्रभाव पड़ता है।

सार्वजनिक ऋणों के कारण व्यक्तियों की बचत करने की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है तथा उपभोग की मात्रा में कमी हो जाती है जिससे वस्तुओं की माँग में कमी आती है जिसके फलस्वरूप वस्तुओं की कीमत में गिरावट आ जाती है।

जब सरकार ऋणों को वापस करती है तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है। किन्तु यदि सरकार बैंकों के ऋण वापस करने के लिये कर लगाती है तो अर्थव्यवस्था में मुद्रा-संकुचन होता है।

सार्वजनिक ऋणों को वापस करने के लिये यदि आय-कर में वृद्धि की जाती है तो व्यक्तिगत व्यय में कमी के फलस्वरूप कीमतों में कमी होगी। इसके विपरीत, यदि कर वस्तुओं पर लगाये जाते हैं तो कीमत-स्तर में वृद्धि हो जाती है।

(2) आर्थिक क्रियाओं और व्यवसाय पर प्रभाव—सार्वजनिक ऋण के परिणामस्वरूप बाजार में मुद्रा की कमी हो जाती है जिसका विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किन्तु सरकार यदि ऋण से प्राप्त राशि को सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादकीय योजनाओं पर व्यय करती है तो उत्पादन के ऊपर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है।

सरकार जब सार्वजनिक ऋण राशि का प्रयोग करती है तब निजी उपभोग में वृद्धि हो जाती है। अतः गुणक प्रभाव (Multiplier Effect) के लागू होने के कारण विनियोग बढ़ जाता है जिससे व्यक्तियों की आय में वृद्धि हो जाती है।

सार्वजनिक ऋण का जब शोधन किया जाता है तब अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है जिससे विनियोग तथा उत्पादन बढ़ता है। किन्तु ऐसा तभी होगा जब ऋणदाता सार्वजनिक ऋण के शोधन के फलस्वरूप मिली राशि का प्रयोग करें। यदि सरकार सार्वजनिक ऋणों के भुगतान हेतु ऊँची दर से कर लगाती है तो उत्पादन तथा उपभोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तथा मन्दी का वातावरण उत्पन्न हो सकता है।

(3) वितरण पर प्रभाव—आय व धन की असमानता पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की एक विशेषता होती है। जब सरकार ऋण प्राप्त करती है तो उन्हें देने वाले अमीर व्यक्ति ही होते हैं। अतः जब ऋण ब्याज सहित वापस किये जाते हैं तो अमीर व्यक्ति लाभान्वित होते हैं तथा आय की असमानता और बढ़ती है। ऋणों के शोधन के लिये यदि सरकार कर लगाती है तो उनका बोझ गरीबों पर भी पड़ता है जिसके फलस्वरूप गरीबों की आय अमीरों के पास चली जाती है। इस दुष्परिणाम को कम करने हेतु सरकार को सार्वजनिक व्यय का अधिक भाग गरीबों पर व्यय करना चाहिए।

(4) रोजगार पर प्रभाव—सार्वजनिक ऋण समाज के संसाधनों के प्रयोग के ढंग को परिवर्तित करके पूर्ण रोजगार प्राप्त करने का एक प्रभावशाली अस्त्र होता है। वैयक्तिक विनियोग तथा सार्वजनिक विनियोग अलग-अलग तरीकों से किया जाता है। सरकार सार्वजनिक ऋण के रूप में निजी क्षेत्र से राशि प्राप्त करके उसे ऐसे स्थानों पर व्यय कर सकती है जिससे अर्थव्यवस्था में कुल माँग का उच्च स्तर बना रहे। फलस्वरूप रोजगार में कमी नहीं आ पायेगी। सरकार सार्वजनिक निर्माण कार्यों (सिंचाई, यातायात, विद्युत-शक्ति आदि) में विनियोग करके रोजगार में वृद्धि कर सकती है। यह कार्य व्यक्ति द्वारा करने सम्भव नहीं होते हैं, इसलिए सरकार ऋण लेकर इन कार्यों को सम्पादित करती है।

(5) बचत, विनियोग एवं पूँजी-निर्माण पर प्रभाव—सार्वजनिक ऋण प्राप्त करते समय प्रायः बचत में वृद्धि नहीं होती है। हाँ, जब सरकार सार्वजनिक ऋण की राशि को व्यय करती है तो राष्ट्रीय आय बढ़ती है जिससे बचत में वृद्धि हो जाती है। सार्वजनिक ऋण का शोधन किया जाता है तो व्यक्तियों की आय बढ़ जाती है जिससे वह अधिक बचत कर सकते हैं। ऋणशोधन के समय मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाने के कारण पूँजी-निर्माण में निजी विनियोजकों को सहायता मिलती है। किन्तु जब सरकार सार्वजनिक ऋणों के शोधन के लिये कर लगाती है तो आय, बचत, विनियोग तथा उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जब सरकार ऋण से प्राप्त राशि को व्यय करती है तब निजी क्षेत्र में आय तथा उपभोग की मात्रा में वृद्धि होती है तथा निजी विनियोग और रोजगार पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। सार्वजनिक व्यय के परिणामस्वरूप व्यक्तियों की क्रय-शक्ति बढ़ती है, वस्तुओं की माँग बढ़ती है तथा उद्योगों का भी विस्तार होता है।

प्रश्न एवं संकेत

- **निबन्धात्मक प्रश्न**

1. सार्वजनिक ऋण से क्या तात्पर्य है ? निजी ऋण एवं सार्वजनिक ऋण में अन्तर बताइए।
2. सार्वजनिक ऋण के प्रकार समझाइए।
3. करों एवं ऋणों में अन्तर पूर्णतया समझाइए। राज्य के विनियोग व्यय के वित्त पोषण के लिये इनमें से कौन-सा अधिक उपयुक्त है ?
   (**संकेत**—प्रश्न के उत्तर के लिये 'सार्वजनिक ऋण बनाम कर' नामक शीर्षक की समस्त विषय-सामग्री देखें।)
4. आन्तरिक तथा बाह्य ऋणों के अन्तर को स्पष्ट कीजिए। सार्वजनिक ऋण की आवश्यकता की विवेचना कीजिए।

इकाई : 2

अध्याय : 7

सार्वजनिक व्यय

[Public Expenditure]

सार्वजनिक व्यय उस व्यय को कहते हैं जो लोक सत्ताओं अर्थात् केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों द्वारा या तो व्यक्तियों की सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु किया जाता है अथवा उनके आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण में वृद्धि के लिए किया जाता है।

सार्वजनिक व्यय निजी व्यय से अनेक बातों में भिन्न होता है—(i) निजी व्यय आय के अनुसार किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति पहले अपनी आय का अनुमान लगाता है तत्पश्चात् व्यय की योजना बनाता है, जबकि सार्वजनिक व्यय में पहले व्यय का अनुमान लगाया जाता है और फिर उस व्यय की पूर्ति हेतु साधनों की खोज की जाती है। (ii) निजी व्यय का उद्देश्य प्राय: निजी लाभ व व्यक्तिगत कल्याण होता है, जबकि सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य समाज-कल्याण होता है। (iii) निजी व्यय का क्षेत्र सीमित होता है, जबकि सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र विस्तृत होता है। (iv) निजी व्यय पर प्राय: व्यक्ति का अपना नियन्त्रण होता है, जबकि सार्वजनिक व्यय पर संसद तथा महालेखा परीक्षक एवं नियन्त्रक का पूर्ण नियन्त्रण होता है। (v) निजी व्यय के प्रभाव व्यक्ति विशेष पर पड़ते हैं, जबकि सार्वजनिक व्यय के प्रभाव देश के आर्थिक जीवन पर पड़ते हैं।

सार्वजनिक व्यय के महत्व में वृद्धि

[Increasing Importance of Public Expenditure]

उन्नीसवीं शताब्दी में राज्य के कार्य बहुत सीमित थे। आन्तरिक शान्ति, सुरक्षा तथा न्याय व्यवस्था ही राज्य के कार्य माने जाते थे। अत: सार्वजनिक व्यय को कम से कम रखने की कोशिश की जाती थी। ग्लैडस्टन के अनुसार, मुद्रा को लोगों की जेबों में ही बढ़ने के लिए छोड़ देना चाहिए अर्थात् सरकार को कम से कम कर लगाकर सीमित व्यय करने चाहिए। परन्तु इस विचारधारा का पतन उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में हो गया। बीसवीं शताब्दी में सार्वजनिक व्यय के महत्व में अत्यन्त वृद्धि हुई। केन्सियन क्रान्ति के बाद यह सिद्ध हो गया कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के द्वारा उत्पादन व रोजगार के स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप विकसित देशों ने अपने सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की। सार्वजनिक व्यय के महत्व में वृद्धि के निम्नलिखित कारण कहे जा सकते हैं :

(1) कल्याणकारी राज्य की स्थापना—बीसवीं शताब्दी में राज्य के स्वभाव व स्वरूप में परिवर्तन हुआ तथा अनेक प्रगतिशील देशों ने कल्याणकारी राज्य के आदर्श को स्वीकारा। परिणामस्वरूप राज्य के कार्य क्षेत्र में अत्यधिक विस्तार हुआ। जनता द्वारा प्रस्तावित तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन सार्वजनिक व्यय है। एक ओर अराजकतावादी राज्य जिसमें सार्वजनिक व्यय का कोई महत्व नहीं होता और दूसरी ओर साम्यवादी राज्य जिसमें सार्वजनिक व्यय की मात्रा बहुत अधिक होती है, के बीच की स्थिति कल्याणकारी राज्य की होती है जिसमें व्यक्तिगत व्यय की अपेक्षा सार्वजनिक व्यय का महत्व बढ़ता जाता है। सरकार द्वारा ऐसी जनोपयोगी सेवाओं का प्रबन्ध किया जाता है जिनका जनसाधारण के लिए महत्व होता है तथा जिनसे जनता की सुख-सुविधा में वृद्धि होती है। शिक्षा, सफाई, रोशनी, अस्पताल, पानी इत्यादि का प्रबन्ध करना राज्य का कर्तव्य होता है।

(2) आर्थिक विकास एवं नियोजन—रूस में आर्थिक नियोजन की सफलता से प्रेरित होकर अनेक विकासशील देशों ने आर्थिक नियोजन पर बड़ी मात्रा में व्यय किया। आर्थिक विकास की पहली आवश्यकता

अर्थव्यवस्था में सड़कें, हवाई अड्डा, बन्दरगाह, नहर, पुल, सिंचाई के साधन, बाँध, विद्युत केन्द्र आदि आधारिक संरचना की सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। यह सुविधाएँ उपलब्ध कराना एक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं होता है, अतः ऐसी सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि सार्वजनिक व्यय द्वारा की जाती है।

नियोजन में सरकार जहाँ निजी क्षेत्र में विशेष उद्योग-धन्धों अथवा व्यक्तियों को आर्थिक अनुदान व सहायता देती है वहीं अनेक वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करती है। भारत में अणुशक्ति, कोयला, इस्पात, उर्वरक, पेट्रोलियम, खनिज, सीमेण्ट, जहाज, रसायन आदि अनेक वस्तुओं का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाता है। इस प्रकार आर्थिक नियोजन द्वारा देश का तेजी से विकास करने का उत्तरदायित्व सरकार का होने के कारण सार्वजनिक व्यय का महत्व बढ़ा है।

(3) सामाजिक न्याय—आज लगभग सभी देशों में आय व सम्पत्ति की असमानताओं को कम करने पर जोर दिया जाता है। सामाजिक न्याय के इस उद्देश्य की प्राप्ति में सार्वजनिक व्यय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सार्वजनिक व्यय सम्बन्धी उचित नीति द्वारा निर्धन वर्गों पर अधिक व्यय करके इस उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है।

(4) आर्थिक स्थायित्व—आर्थिक स्थायित्व को बनाये रखने में भी सार्वजनिक व्यय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अर्थव्यवस्था में मन्दी-स्फीति की दशाएँ उत्पन्न होती रहती हैं। मन्दी के समय सार्वजनिक व्यय की मात्रा को बढ़ाकर उत्पादन तथा रोजगार पर अच्छा प्रभाव डाला जा सकता है। इसके विपरीत, स्फीति के समय उत्पादकीय तथा शीघ्र फलदायक योजनाओं पर सार्वजनिक व्यय को बढ़ाकर स्फीतिक प्रभावों को कम किया जा सकता है। इस प्रकार सार्वजनिक व्यय के द्वारा मन्दी तथा स्फीति को नियन्त्रित करके आर्थिक स्थायित्व बनाये रखने में मदद मिलती है।

(5) अविकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों का विकास—विकासशील देशों में अविकसित तथा पिछड़े क्षेत्रों के विकास की समस्या होती है। ऐसे क्षेत्रों का विकास आधारिक संरचना सम्बन्धी सुविधाएँ उपलब्ध कराकर, सार्वजनिक उद्योगों को लगाकर, वहाँ के विकास के लिए वित्तीय सहायता व अनुदान प्रदान करके ही सम्भव होता है।

(6) सामाजिक सुधार—सार्वजनिक व्यय का महत्व सामाजिक सुधार में भी होता है। उदाहरणार्थ, मद्यपान को रोकने हेतु सार्वजनिक व्यय द्वारा निषेधात्मक उपाय किये जा सकते हैं। इसी प्रकार, सामाजिक कुरीतियों व रूढ़िवादी विचारों के बन्धनों को तोड़ना भी सरकार का कर्तव्य होता है जिन्हें सरकार शिक्षा, निर्धनता, पिछड़ेपन आदि पर व्यय करके कम कर सकती है। हरिजनों और पिछड़ी जातियों व जन-जातियों के उद्धार के लिए भी सरकार अनेक योजनाएँ चलाती है।

सार्वजनिक व्यय का महत्व उपर्युक्त कारणों से तो बढ़ ही रहा है, इसके अतिरिक्त आन्तरिक शान्ति, विदेशी आक्रमण, शीत युद्ध, न्याय आदि के कारण भी सार्वजनिक व्यय का महत्व बढ़ा है।

वैगनर का राज्य की गतिविधियों का नियम
[Wagner's Law of State Activities]

एडोल्फ वैगनर (Adolf Wagner) एक जर्मन अर्थशास्त्री थे, उन्होंने 1883 में सदैव बढ़ती हुई गतिविधियों के नियम का प्रतिपादन किया। इसे राज्य की गतिविधियों का नियम भी कहते हैं जिसमें उन्होंने सार्वजनिक व्यय के महत्व की व्याख्या की है। वैगनर के अनुसार सार्वजनिक व्यय राज्य की गतिविधियों में बढ़ते हुए विस्तार नियम के अनुसार वृद्धि करता है। उनके अनुसार राज्य के कार्यों तथा गतिविधियों की गहन तथा विस्तृत वृद्धि की निरन्तर प्रवृत्ति होती है। **गहन वृद्धि** (Intensive Increase) से आशय है कि राज्य के उन कार्यों पर, जो राज्य द्वारा प्राचीन समय में भी सम्पन्न किए जाते थे; जैसे—सुरक्षा एवं कानून व्यवस्था, उन पर आधुनिक समय में पूर्व की अपेक्षा अधिक व्यय किया जाता है। **विस्तृत वृद्धि** (Extensive Increase) से तात्पर्य है कि राज्य द्वारा अनेक नये-नये कार्यों को अपनाया जाता है तथा उन पर अधिक व्यय किया जाता है। इस प्रकार, आर्थिक गतिविधियों में सरकार के हस्तक्षेप में वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यय भी तेजी से बढ़ते हैं। **वैगनर** के शब्दों में, "विभिन्न देशों एवं विभिन्न समयों की विस्तृत तुलना करने से स्पष्ट होता है कि प्रगतिशील व्यक्तियों के समाज में जिससे हम सम्बन्धित हैं, केन्द्रीय तथा स्थानीय दोनों ही सरकार के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होती रही है। यह वृद्धि विस्तृत तथा गहन दोनों ही रूपों में होती है। केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारें निरन्तर नये कार्यों को अपनाती हैं, जबकि वे पुराने तथा नये कार्यों को अधिक सम्पूर्णता एवं प्रभावपूर्णता से सम्पन्न करती हैं।"